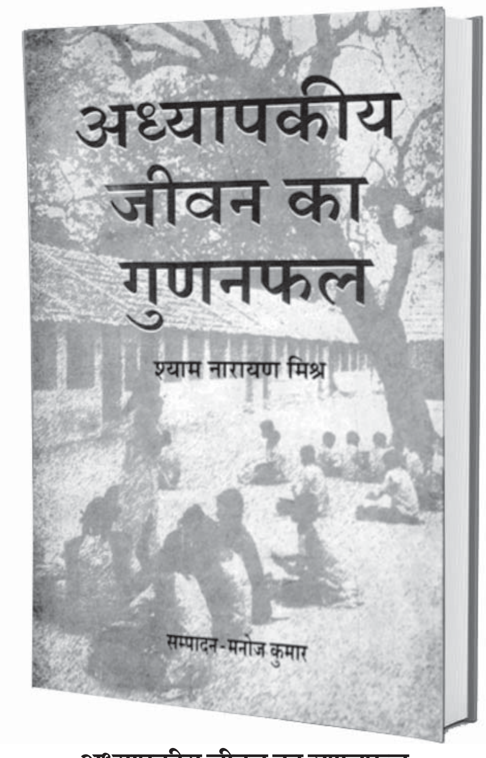
युवक! क्या तुम शिक्षक बनोगे?

अनिल सिंह

श्याम नारायण मिश्र द्वारा लिखित *अध्यापकीय जीवन का गुणनफल* एक लोकप्रिय शिक्षक के अध्यापकीय जीवन का आत्म-वृत्तान्त प्रस्तुत करती है। किताब में, स्वातंत्र्योत्तर भारत के आरम्भिक दशकों में उद्घाटित नवीन जनतांत्रिक चेतना किस तरह उत्तर बिहार के ग्रामीण-क़स्बाई परिवेश में संस्थानिक आकार ग्रहण करती है, कैसे वह नई जनाकांक्षाओं की संवाहक बनती है और किस तरह जाति-आधारित ग्रामीण व्यवस्थाओं के साथ उसका आरोपण-प्रत्यारोपण होता है, साथ ही और किस तरह के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन हुए हैं, इन परिघटनाओं की झलक मिलती है। सं.



अध्यापकीय जीवन का गुणनफल

लेखक : श्याम नारायण मिश्र

अनन्य प्रकाशन

भारत में स्कूल शिक्षा के विकास की यात्रा और उसमें एक अध्यापक के समानान्तर जीवन व उसके योगदान की कहानी इतनी रोचक हो सकती है, यह इस किताब को पढ़ने से पहले नहीं कहा जा सकता था।

इस किताब में हम अपने अतीत के सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने और शिक्षा को लेकर समुदाय की छटपटाहट साफ़ देख सकते हैं। स्कूल संस्था के निर्माण का यह वक़्त दरअसल नए भारत के निर्माण का वक़्त भी रहा है। आज जिस स्कूल की, हम सरकार या किसी पूँजीपति के बिना कल्पना नहीं कर सकते वह समाज द्वारा तैयार किया जा रहा था और आम नागरिक व शिक्षक उसकी अगुआई कर रहे थे।

अपने अतीत और उसके गौरव को देखना कई बार इसलिए ज़रूरी और महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि हम जान सकें कि हम कैसे बने हैं, कैसे हम यहाँ तक पहुँचे हैं, क्या रही है हमारी यात्रा और हमने क्या खोया, क्या पाया है। और अगर वह किसी ऐसे व्यक्ति की ज़ुबानी मिले जिसने इस समय को गढ़ने में जीवन खपाया हो तो फिर वो एक ऐसा दुर्लभ दस्तावेज़ बन जाता है जिसे पीढ़ियाँ सँजोकर रखना चाहेंगी।



चित्र : सजल बैनर्जी

श्याम नारायण मिश्र उत्तरी बिहार के एक साधारण किसान परिवार से हैं। 38 वर्ष के उनके सेवाकाल का हर एक पड़ाव उस समय के शिक्षा जगत में एक नई चेतना और पहल की मिसाल रहा है। किताब में अपनी कथा कहते हुए लेखक कहीं भी इसे महिमामण्डित करता हुआ नहीं जान पड़ता। एक-एक प्रसंग और उसमें निहित मूल्य ख़ुद अपनी बात प्रमाणित करने में सक्षम हैं।

स्कूल संस्था निर्माण के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन की प्राथमिकताओं को परे रख सामुदायिक सहयोग कमाना, शिक्षकों की आपसी गुटबन्दियों को सुलझाकर संस्था को मज़बूत बनाना, छात्रों के असन्तोष को शिक्षा की गुणवत्ता एवं बेहतर कार्यप्रणाली के दम पर ख़त्म करना और निरन्तर अपने कर्तव्य-पथ पर तटस्थ व अविचल रहना एक अध्यापक की ऐसी ख़ूबियाँ हैं जो इस किताब की कथावस्तु बन पाई हैं।

इसके एक-एक अध्याय, एक लोकप्रिय और कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक के जीवन के विविध पड़ाव हैं। 'नई डगर को आँकते ज़िद्दी क़दम', शीर्षक से पहले अध्याय में मैट्रिक के बाद कॉलेज की पढ़ाई और फिर जयप्रकाश नारायण के 'समाजवादी आन्दोलन' व विनोबा के 'भूदान आन्दोलन' में निष्ठावान सक्रियता का ज़िक्र है। एक निर्लिप्त समाजकर्मी के रूप में जेपी के विचारों को लेकर युवकों से संवाद करना और विनोबा के आह्वान पर ज़मीन मालिकों से भूमिहीनों के लिए जमीन माँगे जाने के अभियान में जुटना एक परिपक्व क़दम दिखाई देता है। जान पड़ता है कि यह समय लेखक के वैचारिक रूप से गढ़े जाने का रहा है। 'अध्यापकीय जीवन का पहला पड़ाव', अध्याय में उन्होंने विज्ञान शिक्षक के रूप में जजुआर स्कूल में अपनी पहली सेवा के अनुभव लिखे हैं। प्रयोगशाला के लिए कच्चा-पक्का कमरा तैयार करने और जनसहयोग से उपकरण आदि की व्यवस्था जुटाने का ब्योरा सजीव है। विज्ञान शिक्षक रहते हुए इन्टरमीडिएट साइंस सर्टिफ़िकेट में अपने उत्तीर्ण होने की ख़बर मिलना और अख़बार में रिजल्ट देखने का बहुत ही रोचक वाक़या भी है इसमें। तीसरे अध्याय 'स्थायित्व की तलाश में', में वे डाक विभाग में सरकारी नौकरी मिलने के संयोग का ब्योरा रखते हैं; लेकिन जल्दी ही अध्यापक कर्म का महत्त्व उन्हें समझ में आ जाता है। वे अपने-आप को एक शिक्षक के रूप में ही देखते हैं जो इंसानों के साथ अन्तःक्रिया करता है। विद्यार्थियों को गढ़ना उन्हें चिट्ठियाँ छाँटने और दफ़्तर में बैठकर बाबूगिरी करने से ज़्यादा महत्त्व का समझ आता है। डाकपाल की सरकारी नौकरी छोड़ भागलपुर के स्कूल में



चित्र : सजल बैनर्जी

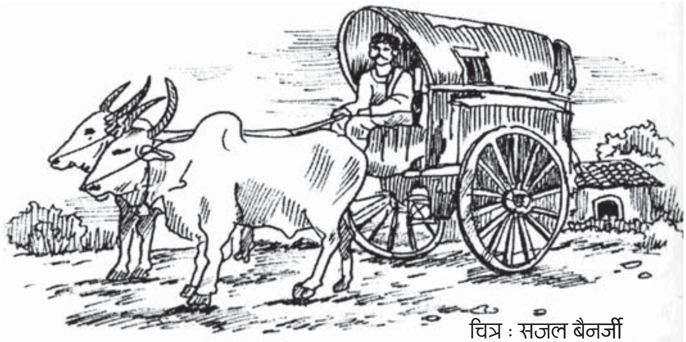


फिर से वापसी और स्थानीय लोगों द्वारा स्वागत करने की बात पाठक को भाव विभोर कर देती है। जितवरिया का विद्यालय उनकी प्रमुख कर्मस्थली के रूप में इस कथा में उभरता है जहाँ अपने पारिवारिक जीवन के साथ-ही-साथ संस्थान में सत्ता संघर्ष को सुलझाने, प्रबन्धकीय कौशल और अपने अध्यापन कर्म को निखारने के अनुभव, 'जैसे उड़ि जहाज़ को पंछी' अध्याय में बहुत ही जीवन्त रूप से आए हैं। स्व-अध्ययन और विद्यार्थियों की सतत प्रतिक्रिया से अपने अध्यापन कर्म को माँजने के बहुत ही सहज विवरण हैं। पाँचवें अध्याय 'संस्थाओं को गढ़ने, सँवारने का सुख', में साखमोहन विद्यालय में सामुदायिक सहयोग से हाई स्कूल की स्थापना, अतिरिक्त भवन का निर्माण, प्रयोगशाला बनाना, सरकारी मान्यता व अनुदान हासिल करना और विद्यालय क्षेत्र में विविध आयोजनों का बहुत ही गहन विवरण है जो एक शिक्षक के बहुआयामी रचनाशील व्यक्तित्व को बता पाने में सक्षम है। छठवें अध्याय 'शिक्षक आन्दोलन और सामाजिक सक्रियता के अन्य पड़ाव' में शिक्षक संघ में सांगठनिक क्रियाकलापों के साथ ही विद्यालयों के सरकारीकरण की माँग और आन्दोलन के चलते जेल यात्रा का भी वर्णन पढ़ने को मिलता है। पुपरी में बालिकाओं के लिए विद्यालय निर्माण और फिर चंदौना में कॉलेज की स्थापना का उनका संघर्ष पठनीय है। चोरौत विद्यालय को उसकी खोई हुई प्रतिष्ठा लौटाने और फिर सेवानिवृत्ति की उम्र तक वहीं अध्यापन और प्रबन्धकीय दायित्व निभाने के साथ इस कथा का समापन होता है। लेकिन सातवें अध्याय 'पुनः सवेरा, और एक फेरा है जी का' में लेखक अपने पारिवारिक दायरे में भारत भ्रमण के अनुभवों को साझा करने से नहीं चूकते। 'हर यात्रा जीवन को समृद्ध करती है', वाक्यांश पर समाप्त होने वाली यह जीवन गाथा अपनी सरलता, रोचकता और कसावट के लिए बार-बार पढ़ी जाने लायक़ है।

उस समय का कोई इतना प्रामाणिक दस्तावेज़ हमें मिलता नहीं है जो बता सके कि आज़ादी के शुरुआती दशकों में जो जनतांत्रिक चेतना अपना आकार ले रही थी और जिसके चलते शिक्षा के क्षेत्र में संस्थानिक निर्माण से लेकर राष्ट्र निर्माण तक के संकल्प दृढ़ हुए थे, उसके वाहक कौन लोग थे और वे क्या मूल्य थे जिनसे यह सब सम्भव हुआ। इस किताब में उन परिघटनाओं की झलक हमें मिलती है।

आज़ादी के इन सत्तर-पचहत्तर सालों में कितना कुछ बदल गया है। शिक्षा की धुरी, शिक्षक, आज अपनी पहचान और प्रतिष्ठा के लिए संघर्षरत है। ऐसे वक़्त में यह किताब शिक्षक पद, उसके दायित्व-बोध और उसके विस्तार का अन्दाज़ा लगाने का मौक़ा देती है।

आत्मकथात्मक शैली में बहुत ही सरल और सहज भाषा में लिखी गई ये किताब आज़ादी के आरम्भिक दशकों का ऐसा चित्र खींचती है कि आप उस समय में अपने-आप को पाते हैं। अनन्य प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित 190 पेज की इस अनूठी आत्मकथा का सम्पादन अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर मनोज कुमार ने किया है। अच्छे लेखन पर अच्छे सम्पादन का बढ़िया उदाहरण है यह किताब।


चित्र : सजल बैनर्जी

आवरण और भीतर के चित्रांकन सजल बैनर्जी ने किए हैं, जो हर अध्याय के साथ उसकी कहानी का दामन थामे हुए जान पड़ते हैं।

आलेख का शीर्षक, 'युवक! क्या तुम शिक्षक बनोगे ?', लेखक की ही एक कविता का शीर्षक है, जो शिक्षक आन्दोलन के उन दिनों में बहुत लोकप्रिय हुई थी।

अनिल सिंह पिछले ढाई दशक से विभिन्न स्वैच्छिक संस्थाओं के साथ मिलकर सामाजिक विकास के कार्य में संलग्न रहे हैं। 15 सालों से प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं। जन संचार, समाज कार्य एवं शिक्षा शास्त्र की पढ़ाई की। वर्तमान में टाटा ट्रस्ट, पराग इनिशिएटिव के लाइब्रेरी एजुकेटर कोर्स में बतौर फ़ैकल्टी जुड़े हुए हैं।

सम्पर्क : bihuanandanil@gmail.com